प्रवचन नं. ६६ कलश-१० दिनाङ्क २३-०८-१९७८ बुधवार
श्रावण कृष्ण ५, वीर निर्वाण संवत् २५०४

समयसार, कलश १० वाँ। **आगे शुद्धनय का उदय होता है,....** क्या कहते हैं ? कलश में लिया है।

**आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यंतविमुक्तमेकम्।**
**विलीनसंकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोडभ्युदेति॥१०॥**

**शुद्धनयः आत्मस्वभावंप्रकाशयन् अभ्युदेति.. शुद्धनय आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ उदयरूप होता है।** क्या कहते हैं ? यह जो त्रिकाली वस्तु आनन्दस्वरूप भगवान, उसकी दृष्टि करने से, शुद्धनय का विषय जो पूर्ण है, उसका अवलम्बन लेने से, पर्याय में शुद्धनय प्रगट होता है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! जैसा उसका ध्रुवस्वरूप है, अतीन्द्रिय अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु! सूक्ष्म विषय है! यह विशेष कहेंगे, १४ और १५ (गाथाओं में) कहेंगे। जो (आत्मा में) असंख्य प्रदेश हैं, उसमें प्रत्येक प्रदेश पर पर्याय है। रात्रि को थोड़ा कहा था। असंख्य प्रदेश हैं तो ऊपर-ऊपर प्रदेश और पर्याय है — ऐसा नहीं। जो असंख्य प्रदेश अन्दर हैं, उसमें भी पर्याय ऊपर है, उस पर्याय को प्रत्येक प्रदेश में जो पर्याय ऊपर है, वह प्रत्येक प्रदेश में जो पर्याय की समीप ध्रुवता पड़ी है, असंख्य प्रदेश पर ऊपर-ऊपर यह पर्याय है ऐसा नहीं। प्रत्येक प्रदेश में पर्याय ऊपर है। सूक्ष्म बात है भाई! आहाहा! यह प्रदेश की-असंख्य प्रदेश में प्रत्येक के प्रदेश ऊपर पर्याय है, उसको अन्दर ध्रुव जो चीज है, पर्याय के समीप में असंख्य प्रदेश में ध्रुव चीज है। आहाहा! उसको यहाँ शुद्धनय कहा गया है। उस शुद्धनय के विषय की दृष्टि जो अन्दर पर्याय, सारी पर्याय, अन्दर मध्य में असंख्य प्रदेश हैं अन्दर, उसके भी ऊपर पर्याय है, उस अन्तरध्रुव में (पर्याय को) झुकाना। सूक्ष्म बात है भाई! समझ में आया ? तो वहाँ शुद्धनय प्रगट होता है। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

पर्यायदृष्टि का अवलम्बन छोड़कर त्रिकाली — पर्याय के समीप में ध्रुव अनादि अनन्त नित्यानन्द प्रभु पड़ा है, उसके सन्मुख पर्याय को ले जाना... आहाहा! सूक्ष्म विषय

है भाई! तब वह शुद्धनय प्रगट होता है। यह विषय, जो आनन्दकन्द प्रभु है, वह पर्याय में प्रगट होता है। समझ में आया? आहाहा! जिस पर्याय में-एक समय का पर्यायांश जो परलक्ष्यी है, उसे छोड़कर प्रत्येक प्रदेश में जो पर्याय है, उस पर्याय को अन्तर में झुकने से... आहाहा! यह बाह्य... ऊपर का प्रदेश, अन्दर का प्रदेश सब प्रदेश, सब प्रदेश के ऊपर पर्याय है। तो उस पर्याय को अन्तर ध्रुव में झुकने से शुद्धनय प्रगट होता है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म है!

अब (गाथा) १४ और १५ का उपोद्घात है। चौदहवीं गाथा का उपोद्घात है। चौदह में अबद्धस्पृष्ट बतायेंगे। अन्दर वस्तु जो ध्रुव वस्तु, जो चीज है, वह तो राग के सम्बन्ध में बन्धरूप भी नहीं। समझ में आया? ऐसी जो चीज अन्दर है, उसकी दृष्टि लगाने से जो शक्तिरूप जो है, वह पर्याय में शुद्धनय का स्वभाव, पर्याय में प्रकाशमान होता है। आहाहा! है? **शुद्धनय**.... यह तो गम्भीर गाथा है भाई! **आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ.....** प्रकाशमान लाता हुआ... आहाहा! जो स्वरूप है, वह पर्याय में प्रकाशमान होता हुआ... समझ में आया? प्रकाश! **आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ....** जो शक्तिरूप से ध्रुवरूप से था, आहाहा! उसकी दृष्टि करने से उस शक्ति में से व्यक्तता का अंश — सब पवित्र परमात्म स्वभाव की व्यक्तता पर्याय में आती है। आहाहा! पण्डितजी! है? एक शब्द में तो बहुत लिया है। आहाहा!

प्रत्येक प्रदेश में पर्याय भी है और ध्रुव भी है। तो वह अन्तर्मुखी दृष्टि करने से, पर्याय को ध्रुव तरफ झुकने से जो शुद्ध वस्तु है, वह पर्याय में प्रकाशमान प्रगट होती है। समझ में आया? वस्तु बहुत....! १४ और १५, यह तो जैन शासन है। आहाहा! १५ में उसे तो (जैन शासन) कहेंगे। यह (गाथा) १४ का उपोद्घात है। आहाहा!

जिसे अपना द्रव्यस्वभाव, जो पर्याय से भिन्न अन्दर तल... तल... तल में पाताल अन्दर पड़ा है। आहाहा! उस ओर का नय अर्थात् दृष्टि अन्दर लगाने से आत्मस्वभाव प्रगट होता है। पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान में वह सम्पूर्ण चीज है, उसका ज्ञान होता है और उसकी प्रतीति होती है। आहाहा! तथापि उस प्रतीति और ज्ञान की पर्याय में पूर्ण स्वरूप नहीं आता, परन्तु पूर्ण स्वरूप की प्रतीति और जो पर्याय हुई, उसमें पूर्ण चीज

जितनी है, उतना प्रगटरूप से ख्याल में-श्रद्धा में आ जाता है। आहाहा! ऐसा विषय! समझ में आया?

शुद्धनय, आत्मस्वभाव अर्थात् त्रिकाली स्वभाव को, आहाहा! **प्रगट करता हुआ....** शक्ति में से व्यक्तता करता हुआ....।

**श्रोता :** अच्छा नया धर्म निकाला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह धर्म....

**श्रोता :** पर्याय धर्म तो नया ही है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेठ ऐसा कहता है कि यह नया धर्म निकाला है (परन्तु) नया नहीं प्रभु! यह आदि-अन्तरहित भगवान अन्दर में विराजमान है, आहाहा! यह अभी आयेगा... उस सन्मुख का झुकाव करके जो शक्ति में से अनन्त गुण की व्यक्तता वेदन में आती है, वह शुद्धनय प्रगट हुआ — ऐसा कहा जाता है।

भाई! यह तो शब्द-शब्द की तुलना में एक शब्द भी कम-ज्यादा हो तो (भाव में) बदलाव हो जाये ऐसी चीज है। आहाहा! समझ में आया? **शुद्धनय आत्मस्वभाव को....** अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को, ध्रुवस्वभाव को **प्रगट करता हुआ....** इस पर्याय में शक्ति की व्यक्तता प्रगट करता हुआ, **उदयरूप होता है....** बाहर प्रसिद्धि में आता है। आहाहा! जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान में शुद्ध अनुभव हुआ तो उसमें सारा आत्मा प्रसिद्धि (में) आया कि यह आत्मा ऐसा है — ऐसी पर्याय में प्रसिद्धि आयी। इस टीका का नाम आत्मख्याति है न? इस टीका का नाम आत्मख्याति है। आहाहा! तो वह आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ पर्याय में निर्मलता अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता हुआ... आहाहा!

**परभावभिन्नम्....** पहले अस्ति से कहा (कि) ऐसा प्रगट हुआ। आहाहा! परन्तु कैसा (अब) कहते हैं कि **परभावभिन्नम्.... परद्रव्य, परद्रव्य के भाव तथा परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विभाव.....** शुभ-अशुभ विकल्प। तीनों बोल, इन परभावों में तीनों बोल आये। परभाव में तीन बोल आये — परद्रव्य कर्मादि, परद्रव्य का भाव उदयादि, उसका उदय, हों! कर्म में उदय आना, वह परद्रव्य का भाव और उस

निमित्त से अपने में जो विभाव होता है, वह तीसरा बोल हुआ। आहाहा! इन तीनों से भगवान भिन्न है। आहाहा! है ? यह तो अल्प शब्द है, सन्तों की वाणी है! आहाहा! सर्वज्ञ अनुसारणी वाणी है तो उसमें तो बहुत मर्म भरा है।

कहते हैं कि **परभावभिन्नम्....** पहले आत्मस्वभाव प्रगट हुआ — शुद्धता का, आनन्द का अनुभव आया और जो अनन्त शक्तियाँ हैं, उसकी एक अंश व्यक्तता-प्रगटता शुद्धनय से हुई परन्तु वह कैसे हुआ ? कि परद्रव्य से भिन्न हुआ। किसी राग से, कर्म से, कर्म के भाव से, और कर्म के निमित्त से अपने में हुआ विकार से — तीनों से परभाव से भिन्न हुआ। आहाहा! ऐसा कहने में यह कहते हैं कि कोई ऐसा कहे कि व्यवहाररत्नत्रय, जो राग है, उससे निश्चय पर्याय उत्पन्न होगी तो यहाँ कहते हैं कि परभाव से भिन्न प्रगट होता है। समझ में आया ? आहाहा!

अनन्त काल में कभी एक सेकेण्ड भी अपना द्रव्यस्वभाव क्या है, उसे स्पर्श नहीं किया। आहाहा! समझ में आया ? वह परभाव से भिन्न... आहाहा! और भिन्न है और प्रगट पर्याय में हुआ परन्तु वह वस्तु कैसी है ? **आपूर्णम्,** आपूर्णम् — आ... पूर्णम् आत्मस्वभाव 'आ' **सम्पूर्णरूप से पूर्ण है।** 'आ' का अर्थ यह किया। 'आ' अतिशय से अतिशय स्वरूप सम्पूर्णरूप से पूर्ण है। भगवान तो पूर्णरूप अन्दर समस्त लोकालोक को जाननेवाली शक्तिरूप आत्मा है। कार्य में यहाँ अभी वह बात नहीं ली है। आहाहा!

उसका — उस भगवान का स्वभाव... भगवान ही आत्मा को ऐसा कहते हैं। उसको समस्त लोकालोक का ज्ञाता (कहा) है। सारा लोकालोक का ज्ञायकस्वभाव ज्ञाता है, किसी चीज का कर्ता नहीं और किसी चीज से अपने में मोक्षपर्याय-धर्म की पर्याय नहीं होती। आहाहा! समझ में आया ?

**श्रोता :** कोई चीज अर्थात् क्या ?

**उत्तर :** कोई चीज अर्थात् राग, कहा न ? राग, परद्रव्य, परद्रव्य का परद्रव्य में रहा भाव और परद्रव्य के निमित्त से अपने में हुआ विभाव, उससे भिन्न अपने आत्मस्वभाव की शक्ति की व्यक्तता हुई, वह स्वभाव कैसा है ? **आपूर्णम्।**

सम्पूर्णरूप से पूर्ण ज्ञानघन, आनन्दघन, दर्शनघन है। आहाहा! यह आपूर्णम्! 'आ'

अर्थात् समस्त प्रकार से; 'आ' अर्थात् अतिशय से; 'आ' अर्थात् विशेष प्रकार से — सम्पूर्णरूप से पूर्ण है। आहाहा! भगवान का स्वभाव-आत्मा का (स्वभाव) पूर्ण... पूर्ण... पूर्णरूप है। (उसमें) आवरण तो नहीं, अशुद्धता तो नहीं परन्तु अपूर्णता (भी) नहीं। आहाहा! ऐसी चीज को, आहाहा! **समस्त लोकालोक को प्रगट करता है,** शक्ति ऐसी है कि लोकालोक को जाने — ऐसी सम्यग्दर्शन में प्रतीति हुई है। आहाहा! समझ में आया? तथापि सम्यग्दर्शन की पर्याय में वह सम्पूर्ण लोकालोक को जानने की शक्ति है, वह चीज सम्यग्दर्शन की पर्याय में नहीं आती, परन्तु पर्याय में उस लोकालोक को जानने की शक्ति है, उसका सामर्थ्य है — ऐसा ज्ञान आ जाता है, श्रद्धा में ऐसी प्रतीति आती है। समझ में आया? आहाहा!

**( क्योंकि ज्ञान में भेद कर्म संयोग से हैं,.... )** वस्तुस्वभाव में तो कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! **( शुद्धनय में कर्म गौण हैं.... )** यह अल्पता है, यह निमित्त के आश्रित हुई है। अल्पता अपने कारण से परन्तु निमित्त के आश्रय से अल्पता है, यह बात यहाँ गौण करके, गर्भितरूप से रखकर, लक्ष्य छोड़कर, उस त्रिकाली ज्ञायकभाव की दृष्टि है, उसमें अपूर्णता-अशुद्धता है ही नहीं। परभाव से भिन्न कहने में अशुद्धता है नहीं और अपना पूर्ण स्वभाव कहने में अपूर्णता है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

**और वह, आदि-अन्त-विमुक्तम्....** आहाहा! भगवान आत्मा का आत्मस्वभाव आदि अन्त-पूर्व और पश्चिम के काल से तो भिन्न है, उसमें कोई पहले काल था और बाद में यह था — ऐसा नहीं है। आहाहा! **आदि-अन्त-विमुक्तम्.....** पूर्व के काल में यहाँ था और बाद के काल में नाश होगा — ऐसा नहीं है। **आदि-अन्त-विमुक्तम्.....** जिसके काल में आदि नहीं और जिसके काल में अन्त नहीं — ऐसा आदि-अन्त से विमुक्त है। आहाहा! यह पर्याय की बात नहीं, वस्तु की (बात है)। यह आदि-अन्त विमुक्तम् — अकेला मुक्त नहीं, विमुक्तम्, आहाहा! है, भगवान पूर्णानन्द परमात्मस्वरूप, वह आदि और अन्तरहित है; अनादि-अनन्त है। उसकी शुरुआत हुई है और बाद में अन्त होगा — ऐसा नहीं है। आहाहा!

**( अर्थात् किसी आदि से लेकर जो किसी से उत्पन्न नहीं किया गया, और**

**कभी भी किसी से जिसका विनाश नहीं होता, ऐसे पारिणामिकभाव को प्रगट करता है।.... )** आहाहा! पारिणामिक अर्थात् सहजस्वभाव। पाठ में तो ऐसा आता है न! पंचास्तिकाय में ५६ गाथा (में आता है)। पारिणामिकभव, परिणामीभव ऐसा पाठ संस्कृत में पंचास्तिकाय ५६ गाथा (में है)। परिणामीभव — भाव वह भी परिणामीभाव, वह परिणाम अर्थात् पर्याय, यहाँ नहीं लेना। पारिणामिकभाव सहजभाव रहा है। पारिणामिकभाव त्रिकालीभाव है। पंचास्तिकाय में ५६ गाथा में पाँच भावों की व्याख्या आती है। व्याख्या तो सब हो गयी है। सहज स्वभाव वह पारिणामिक अर्थात् सहज स्वभाव से... सहज स्वभाव से जो त्रिकाल है, उसको यहाँ पारिणामिकभाव कहते हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तो पर्याय के भेद हैं, ये चार (भाव) उसमें (पारिणामिक में) नहीं हैं। आहाहा! क्षायिकभाव की पर्याय से भी आत्मा भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

— ऐसा पारिणामिकभाव, जिसमें क्षायिक, क्षयोपशम, उपशम, और उदय... उदय तो पहले कह दिया, परभाव से भिन्न (कह दिया) परन्तु यहाँ तो अब उपशम, क्षयोपशम, और क्षायिक आदि जो पर्याय है, उससे भी भिन्न परम पारिणामिक सहजभाव - भाव त्रिकाल.... क्षायिकभाव की तो उत्पत्ति होती है। समझ में आया? तो वह नहीं। यहाँ तो त्रिकाल — उत्पन्न और विनाशरहित जो त्रिकाल स्वभाव है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है प्रभु! वह ज्ञान का दल पड़ा है, अन्दर ज्ञान का सागर है, ध्रुव (है)। जो पानी का प्रवाह है, वह ऐसे चलता है और यह प्रवाह ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ऊर्ध्व... ऊर्ध्व... ऐसे चलता है। यह आदि-अन्तरहित चीज है। आहाहा! ऊर्ध्वप्रचय में आता है न, वह प्रवचनसार ९३ गाथा (में आता है) आयतसमुदाय, सामान्यसमुदाय — वह आता है। गुण का समुदाय एक और आयत अर्थात् पर्याय का समुदाय सामान्य। आहाहा! तो कहते हैं इनसे पारिणामिक ज्ञायकभाव.... पारिणामिक क्यों लिया? उसको सहज भाव बताना है, वरना तो पारिणामिक भाव तो परमाणु में भी है परन्तु यह पारिणामिकभाव ज्ञायकभाव है। यहाँ त्रिकाली ज्ञायकभाव को पारिणामिकभाव कहा गया है। आहाहा! भाव को प्रगट करते हैं....

और **और वह, आत्मस्वभाव को एक-सर्व भेदभावों से (द्वैतभावों से) रहित....** आहाहा! क्षायिक की पर्याय और क्षयोपशम की पर्याय और समस्त भेदभावों से

रहित... आहाहा! **एकाकार-प्रगट करता है,.....** एकरूप ध्रुव है, (वह) उसको ज्ञान में-श्रद्धा में आता है। समझ में आया? अध्यात्म की बातें बहुत सूक्ष्म हैं भाई! यह कोई शब्दों में भले हो, परन्तु उसका भाव बहुत गम्भीर है। आहा! अन्दर में स्वभाव-पारिणामिकभाव सर्व भेदों से रहित (अर्थात्) क्षायिक, उपशम, और क्षयोपशम से भी रहित एकाकार प्रगट करता है। एक स्वरूप — त्रिकाली है, वह प्रगट करता है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं, कठिन पड़ती हैं इसलिए लोगों को.... (परन्तु) है परम सत्य बात। भाई! अरे! उसका आश्रय कभी नहीं लिया, उसकी शरण में नहीं गया। मंगलस्वरूप भगवान त्रिकाल है, वह मंगलस्वरूप ही त्रिकाल है, उसकी शरण में नहीं गया तो वह वस्तु-उसकी शरण में जाने से पर्याय में एकरूप है — ऐसा जानने में आता है। पर्याय में, वह वस्तु एकरूप त्रिकाल है — ऐसा जानने में आता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा है। सेठ कहता है न कि नया निकाला? नया नहीं, यह तो (सनातन मार्ग है)। आहाहा!

परमात्मस्वरूप से विराजमान, आदि-अन्तरहित, और लोकालोक को जानने की शक्ति.... लोकालोक को अपना मानने का भाव नहीं, परन्तु लोकालोक को जानने की शक्तिवाला वह तत्त्व है। आहाहा! ऐसे एकाकार प्रगट करता है।

**और [ विलीनसंकल्प-विकल्प-जालं ] जिसमें समस्त संकल्प-विकल्प के समूह विलीन हो गये हैं.....** आहाहा! पहले संकल्प था, यह कहते हैं। संकल्प की व्याख्या दो-तीन प्रकार की है। एक प्रकार यहाँ लिया है। **( द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म आदि पुद्गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना, सो संकल्प है,.... )** आहाहा! रागादि भाव में अपनी कल्पना करना, वह संकल्प मिथ्यात्व का है। समझ में आया? है? इन्होंने स्पष्टीकरण किया है। द्रव्यकर्म जड़, भावकर्म विकल्प, नोकर्म — शरीर, मन, वाणी आदि पुद्गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना, वह संकल्प मिथ्यात्व है। यहाँ मिथ्यात्व को संकल्प कहा है। आहाहा! **और ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद ज्ञात होना....** यह अनन्तानुबन्धी का विकल्प बताते हैं। संकल्प में मिथ्यात्व है और विकल्प में अनन्तानुबन्धी का भाव है, वह दोनों से रहित है। है? ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में जो भेद ज्ञात होते हैं, वह अनन्तानुबन्धी का — लोभकषाय के कारण, आहाहा! **ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद ज्ञात**

**होना,....** मेरा ज्ञान भेदरूप है ऐसा, वह विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय अनेक हैं, वे जानने में आते हैं परन्तु अनेक ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद मालूम हो गया, ज्ञान में भेद पड़ा, उस विकल्प में अनन्तानुबन्धी का विकल्प है। समझ में आया?

**ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है।** द्रव्यकर्म, भावकर्म, और नोकर्म मेरा है — ऐसी दृष्टि छूट जाती है और ज्ञेयों के जानने में मानो ज्ञान में अनेकपना आ गया — वह भी छूट जाता है। आहाहा! ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है, प्रगट होता है। आहाहा! अथवा शुद्धनय का कथन अब शुरु होता है — ऐसा कहा है। समझ में आया? कलश-टीका है न, उसमें ऐसा शब्द लिया है — यहाँ से शुद्धनय... अब कथन में — उपदेश में आता है। भाव से ले तो शुद्धनय जो त्रिकाली चीज है, वह पर्याय में प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? **इस अर्थ का गाथासूत्र कहते हैं।** लो, यह तो उपोद्घात हुआ।

## गाथा १४

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥ १४॥

यः पश्यति आत्मानम् अबद्धस्पृष्टमनन्यकं नियतम्।
अविशेषमसंयुक्तं तं शुद्धनयं विजानीहि॥

या खल्वबद्धस्पृष्टस्यानन्यस्य नियतस्याविशेषस्यासंयुक्तस्य चात्मनोऽनुभूतिः स शुद्धनयः, सा त्वनुभूतिरात्मैव; इत्यात्मैक एव प्रद्योतते। कथं यथोदितस्यात्मनोऽनुभूतिरिति चेद्बद्धस्पृष्टत्वादीनामभूतार्थत्वात्। तथा हि – यथा खलु बिसिनीपत्रस्य सलिलनिमग्नस्य सलिलस्पृष्टत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां सलिलस्पृष्टत्वं भूतार्थमप्येकान्ततः सलिलास्पृश्यं बिसिनीपत्रस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्, तथात्मनोऽनादिबद्धस्य बद्धस्पृष्टत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां बद्धस्पृष्टत्वं भूतार्थमप्येकान्ततः पुद्गलास्पृश्यमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्। यथा च मृत्तिकायाः करककरीरकर्करीकपालादिपर्यायेणानुभूयमानतायामन्यत्वं भूतार्थमपि सर्वतोऽप्यस्खलन्तमेकं मृत्तिकास्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्, तथात्मनो नारकादिपर्यायेणानुभूयमानतायामन्यत्वं भूतार्थमपि सर्वतोऽप्यस्खलन्तमेकमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्। यथा च वारिधेर्वृद्धिहानिपर्यायेणानुभूयमानतायामनियतत्वं भूतार्थमपि नित्यव्यवस्थितं वारिधिस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्, तथात्मनो वृद्धिहानिपर्यायेणानुभूयमानतायामनियतत्वं भूतार्थमपि नित्यव्यवस्थितमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्। यथा च कांचनस्य स्निग्धपीतगुरुत्वादिपर्यायेणानुभूयमानतायां विशेषत्वं भूतार्थमपि प्रत्यस्तमितसमस्तविशेषं कांचनस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्, तथात्मनो ज्ञानदर्शनादिपर्यायेणानुभूयमानतायां विशेषत्वं

भूतार्थमपि प्रत्यस्तमितसमस्तविशेषमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्। यथा चापां सप्तार्चिःप्रत्ययौष्ण्यसमाहितत्व-पर्यायेणानुभूयमानतायां संयुक्तत्वं भूतार्थ-मप्येकान्ततः शीतमप्स्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्, तथात्मनः कर्मप्रत्यय -मोहसमाहितत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां संयुक्तत्वं भूतार्थमप्येकान्ततः स्वयं बोधं जीवस्वभावमुपेत्यानुभूय-मानतायामभूतार्थम्।

उस शुद्धनय को गाथासूत्र से कहते हैं —

अनबद्धस्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्म को।
अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जान जो॥

गाथार्थ : [ यः ] जो नय [ आत्मानं ] आत्मा को [ अबद्धस्पृष्टम् ] बन्ध रहित और पर के स्पर्श से रहित, [ अनन्यकं] अन्यत्व रहित, [ नियतम् ] चलाचलता रहित, [ अविशेषम् ] विशेष रहित, [ असंयुक्तं ] अन्य के संयोग से रहित — ऐसे पाँच भावरूप से [ पश्यति ] देखता है [ तं ] उसे, हे शिष्य! तू [ शुद्धनयं ] शुद्धनय [ विजानीहि ] जान।

टीका : निश्चय से अबद्ध-अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त — ऐसे आत्मा की अनुभूति शुद्धनय है और वह अनुभूति आत्मा ही है; इस प्रकार आत्मा एक ही प्रकाशमान है। ( शुद्धनय, आत्मा की अनुभूति या आत्मा सब एक ही हैं, अलग-अलग नहीं )। यहाँ शिष्य पूछता है कि जैसा ऊपर कहा है, वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है ? उसका समाधान यह है — बद्धस्पृष्ट आदि भाव अभूतार्थ हैं इसलिए यह अनुभूति हो सकती है। इस बात को दृष्टान्त से प्रगट करते हैं —

जैसे कमलिनी-पत्र जल में डूबा हुआ हो तो उसका जल से स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना भूतार्थ है—सत्यार्थ है, तथापि जल से किंचित्मात्र भी न स्पर्शित होने योग्य कमलिनी-पत्र के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना अभूतार्थ है—असत्यार्थ है; इसी प्रकार अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का, पुद्गलकर्मों से बँधने-स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि पुद्गल से किंचित्मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है।

तथा जैसे मिट्टी का, ढक्कन, घड़ा, झारी इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि सर्वतः अस्खलित ( — सर्व पर्यायभेदों से किंचित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाले ऐसे ) एक मिट्टी के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर ( पर्यायों के अन्य-अन्यरूप से ) अन्यत्व भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि सर्वतः अस्खलित ( सर्व पर्यायभेदों से किंचित्मात्र भेदरूप न होनेवाले ) एक चैतन्याकार आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है-असत्यार्थ है।

जैसे समुद्र का, वृद्धिहानिरूप अवस्था से अनुभव करने पर अनियतता ( अनिश्चितता ) भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि नित्य-स्थिर समुद्रस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, वृद्धिहानिरूप पर्यायभेदों से अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि नित्य-स्थिर ( निश्चल ) आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है।

जैसे सोने का, चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं - ऐसे सुवर्णस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, ज्ञान, दर्शन आदि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं ऐसे आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है।

जैसे जल का, अग्नि जिसका निमित्त है ऐसी उष्णता के साथ संयुक्ततारूप-तप्ततारूप-अवस्था से अनुभव करने पर ( जल का ) उष्णतारूप संयुक्तता भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि एकान्त शीतलतारूप जलस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर ( उष्णता के साथ ) संयुक्तता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, कर्म जिसका निमित्त है ऐसे मोह के साथ संयुक्ततारूप अवस्था से अनुभव करने पर संयुक्तता भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि जो स्वयं एकान्त बोधरूप ( ज्ञानरूप ) है ऐसे जीवस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर संयुक्तता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है।

भावार्थ : आत्मा पाँच प्रकार से अनेकरूप दिखाई देता है — ( १ ) अनादिकाल से कर्मपुद्गल के सम्बन्ध से बँधा हुआ कर्मपुद्गल के स्पर्शवाला दिखाई देता है, ( २ ) कर्म के निमित्त से होनेवाली नर, नारक आदि पर्यायों में भिन्न-भिन्न स्वरूप से दिखाई देता है — ( ३ ) शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद ( अंश ) घटते भी हैं, और बढ़ते भी हैं-यह वस्तु का स्वभाव है इसलिए वह नित्य-नियत एकरूप दिखाई नहीं देता, ( ४ ) वह दर्शन, ज्ञान आदि अनेक गुणों से विशेषरूप दिखाई देता है और ( ५ ) कर्म के निमित्त से होनेवाले मोह, राग, द्वेष आदि परिणामों कर सहित होने से वह सुखदुःखरूप दिखाई देता है। यह सब अशुद्ध-द्रव्यार्थिकरूप व्यवहारनय का विषय है। इस दृष्टि ( अपेक्षा ) से देखा जाये तो यह सब सत्यार्थ है। परन्तु आत्मा का एक स्वभाव इस नय से ग्रहण नहीं होता और एक स्वभाव को जाने बिना यथार्थ आत्मा को कैसे जाना जा सकता है ? इसलिए दूसरे नय को — उसके प्रतिपक्षी शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को ग्रहण करके, एक असाधारण ज्ञायकमात्र आत्मा का भाव लेकर, उसे शुद्धनय की दृष्टि से सर्व परद्रव्यों से भिन्न, सर्व पर्यायों में एकाकार, हानिवृद्धि से रहित, विशेषों से रहित और नैमित्तिक भावों से रहित देखा जाये तो सर्व ( पाँच ) भावों से जो अनेक प्रकारता है, वह अभूतार्थ है — असत्यार्थ है।

यहाँ यह समझना चाहिए कि वस्तु का स्वरूप अनन्त धर्मात्मक है, वह स्याद्वाद से यथार्थ सिद्ध होता है। आत्मा भी अनन्त धर्मवाला है। उसके कुछ धर्म तो स्वाभाविक हैं और कुछ पुद्गल के संयोग से होते हैं। जो कर्म के संयोग से होते हैं, उनसे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है और तत्सम्बन्धी जो सुखदुःखादि होते हैं, उन्हें भोगता है। यह, इस आत्मा की अनादिकालीन अज्ञान से पर्यायबुद्धि है; उस अनादि-अनन्त एक आत्मा का ज्ञान नहीं है। इसे बतानेवाला सर्वज्ञ का आगम है। उसमें शुद्धद्रव्यार्थिकनय से यह बताया है कि आत्मा का एक असाधारण चैतन्यभाव है जो कि अखण्ड नित्य और अनादिनिधन है। उसे जानने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है। परद्रव्यों से, उनके भावों से और उनके निमित्त से होनेवाले अपने विभावों से अपने आत्मा को भिन्न जानकर जब जीव उसका अनुभव करता है तब परद्रव्य के भावोंस्वरूप परिणमित नहीं होता; इसलिए कर्मबन्ध नहीं होता और संसार से निवृत्ति हो जाती है। इसलिए पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनय को गौण करके अभूतार्थ ( असत्यार्थ ) कहा है और शुद्धनिश्चयनय को सत्यार्थ कहकर उसका आलम्बन दिया है। वस्तुस्वरूप की प्राप्ति

होने के बाद उसका भी आलम्बन नहीं रहता। इस कथन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि शुद्धनय को सत्यार्थ कहा है इसलिए अशुद्धनय सर्वथा असत्यार्थ ही है। ऐसा मानने से वेदान्तमतवाले जो कि संसार को सर्वथा अवस्तु मानते हैं उनका सर्वथा एकान्त पक्ष आ जायेगा और उससे मिथ्यात्व आ जायेगा, इस प्रकार यह शुद्धनय का आलम्बन भी वेदान्तियों की भाँति मिथ्यादृष्टिपना लायेगा। इसलिए सर्वनयों की कथंचित् सत्यार्थ का श्रद्धान करने से सम्यक्दृष्टि हुआ जा सकता है। इस प्रकार स्याद्वाद को समझकर जिनमत का सेवन करना चाहिए, मुख्य-गौण कथन को सुनकर सर्वथा एकान्त पक्ष नहीं पकड़ना चाहिए। इस गाथासूत्र का विवेचन करते हुए टीकाकार आचार्य ने भी कहा है कि आत्मा व्यवहारनय की दृष्टि में जो बद्धस्पृष्ट आदि रूप दिखाई देता है वह इस दृष्टि से तो सत्यार्थ ही है परन्तु शुद्धनय की दृष्टि से बद्धस्पृष्टादिता असत्यार्थ है। इस कथन में टीकाकार आचार्य ने स्याद्वाद बताया है — ऐसा जानना।

यहाँ यह समझना चाहिए कि वह नय है यह श्रुतज्ञान-प्रमाण का अंश है; श्रुतज्ञान वस्तु को परोक्ष बतलाता है; इसलिए यह नय भी परोक्ष ही बतलाता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषयभूत, बद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावों से रहित आत्मा चैतन्यशक्तिमात्र है। वह शक्ति तो आत्मा में परोक्ष है ही; और उसकी व्यक्ति कर्मसंयोग से मतिश्रुतादि ज्ञानरूप है, वह कथंचित् अनुभवगोचर होने से प्रत्यक्षरूप भी कहलाती है, और सम्पूर्णज्ञान-केवलज्ञान यद्यपि छद्मस्थ के प्रत्यक्ष नहीं है तथापि यह शुद्धनय आत्मा के केवलज्ञानरूप को परोक्ष बतलाता है। जब तक जीव इस नय को नहीं जानता तब तक आत्मा के पूर्णरूप का ज्ञान-श्रद्धान नहीं होता। इसलिए श्रीगुरु ने इस शुद्धनय को प्रगट करके उपदेश किया है कि बद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावों से रहित पूर्णज्ञानघन-स्वभाव आत्मा को जानकर श्रद्धान करना चाहिए, पर्यायबुद्धि नहीं रहना चाहिए।

यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि ऐसा आत्मा प्रत्यक्ष तो दिखाई नहीं देता और बिना देखे श्रद्धान करना असत् श्रद्धान है। उसका उत्तर यह है — देखे हुए का ही श्रद्धान करना तो नास्तिकमत है। जैनमत में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रमाण माने गये हैं, उनमें से आगम प्रमाण परोक्ष है; उसका भेद शुद्धनय है। इस शुद्धनय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा का श्रद्धान करना चाहिए, मात्र व्यवहार-प्रत्यक्ष का ही एकान्त नहीं करना चाहिए।

गाथा - १४ पर प्रवचन

**जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।**
**अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥ १४॥**

**अनबद्धस्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्म को।**
**अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जान जो॥**

**टीका - निश्चय से....** भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप को शुद्धनय भी कहते हैं और द्रव्य स्वरूप भी कहते हैं। ग्यारहवीं गाथा में 'भूदत्थ देसी दोदू शुद्धनयो' — भूतार्थ जो ध्रुव है, उसे शुद्धनय कहते हैं। नय और नय के विषय को अध्यात्मदृष्टि में छोड़ देता है। समझ में आया? जो त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु (है), उसे ही शुद्धनय कहा है, वरना तो शुद्धनय का तो वह विषय है परन्तु विषय और विषयी का भेद छोड़कर, वह त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसे ही शुद्धनय कहा गया है। आहाहा! अब ऐसा पाठ याद कहाँ रखे इसमें, धन्धे के कारण फुरसत नहीं मिलती, सेठ!

**श्रोता :** सेठ आज जानेवाला है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जानेवाला है? समझ में आया। आहाहा!

जो कोई आत्मा को अबद्ध-राग आदि, कर्म आदि से बद्ध नहीं — ऐसा **पस्सदि** अर्थात् अन्तरंग में देखते हैं —

(१) **अस्पृष्ट —** कर्म का विसस्रा परमाणु पुद्गल का है, कर्म होने की योग्यतावाला (है) उससे भी अस्पृष्ट है। भगवान तो राग से अस्पृष्ट है और विसस्रा परमाणु साथ में हैं कर्मरूप परिणमित नहीं हुए, उनके स्पर्श से भी रहित है। आहाहा!

(२) **अनन्य —** प्रत्येक का अर्थ करेंगे, हों! अनन्य है, अन्य-अन्य गति उसमें है नहीं, यह तो अनन्य है, वह तो अन्य-अन्य से अनन्य है, भिन्न है। आहाहा!

(३) **नियत —** पर्याय में अनेकता दिखती है, उससे भी वह भिन्न है।

(४) **अविशेष —** जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद दिखते हैं, वह विशेष, उससे रहित है; अविशेष है, सामान्य है, आहाहा!

(५) **असंयुक्त —** शुभ-अशुभभाव में जो आकुलता होती है, उस आकुलता से संयुक्त नहीं। आहा! भगवान अन्दर उस आकुलता से सहित नहीं है। आहाहा!

**ऐसे आत्मा की अनुभूति....** ऐसे आत्मा का अनुभव.... यहाँ शुद्धनय कहना है न? ज्ञानप्रधान कथन यह है, दर्शनप्रधान कथन यह है और १५ वीं में ज्ञानप्रधान कथन आयेगा, १४ वीं में दर्शनप्रधान कथन है, १५ वीं में ज्ञानप्रधान कथन आयेगा। अभी तो सम्यग्दर्शन की प्रतीति क्या है, यह इसका कथन है और साथ में अनुभूति का कथन है नय का, वह १५ वीं में आयेगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **ऐसे आत्मा....** ऐसे आत्मा, पर्याय में राग का सम्बन्ध है, वह द्रव्य में सम्बन्ध नहीं है — **ऐसे आत्मा की अनुभूति....** पर्याय में ऐसे आत्मा का अनुभव होना। आहाहा! यह आत्मा जो कहा, वह तो अबद्धस्पृष्ट है, वह पर्याय से रहित चीज है परन्तु उसका अनुभव करना वह पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? **उसकी अनुभूति शुद्धनय है....** देखो, अनुभूति को शुद्धनय कहा। एक ओर शुद्धनय त्रिकाल को कहते हैं और (यहाँ) तो अनुभूति को ही शुद्धनय कहा क्योंकि शुद्धनय के विषय में दृष्टि जहाँ गयी तो पर्याय में अनुभूति हुई; अतः उसको भी यह शुद्धनय कहा जाता है। आहाहा!

**और वह अनुभूति आत्मा ही है....** फिर वह जो अनुभूति हुई, आनन्द का वेदन आया, वह आत्मा है, यह कह दिया। यह पर्याय है वह आत्मा है; रागादिक थे, वह अनात्मा था और वस्तु का जो अनुभव हुआ, वह शुद्धनय हुआ और उस पर्याय को आत्मा कहते हैं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें हैं, बापू! भाई!

**श्रोता :** अलिंगग्रहण के बीसवें बोल में अनुभव की पर्याय को आत्मा कहा है। वह एक ही बात है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह अनुभूति पर्याय की बात है। बीसवें बोल की बात वह। बीसवें बोल की बात मुझे कहना थी परन्तु कल कह गये हैं। अलिंगग्रहण के बीसवें बोल में यह आया है कि आत्मा अलिंगग्रहण अर्थात् आहाहा! वह द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। बीसवें बोल में ऐसा आया है क्योंकि द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, तो द्रव्य का अनुभव नहीं होता, यह अनुभव तो पर्याय में होता है। आहाहा! तो आत्मा अलिंगग्रहण, अ-लिंग ग्रहण।

लिंग अर्थात् सामान्य, उसको नहीं छूता है और निर्मल पर्याय में आत्मा वेदन में आया, वह निर्मल पर्याय आत्मा कहा गया है। आहाहा! वह कल कहा था, परन्तु यह तो भाई आये हैं... समझ में आया? आहाहा!

वस्तु जो पूर्ण शुद्ध है, लोकालोक को जानने की ताकतवाली और पूर्णम्... सम्पूर्णम् अतिशयवाली, उस चीज को नय कहा परन्तु उसका अनुभव हुआ उसको भी यहाँ शुद्धनय कहा। आहा! क्योंकि राग आदि की पर्यायदृष्टि है, वह अशुद्धनय है। आहाहा! और त्रिकाल ज्ञायकभाव की दृष्टि हुई, अनुभूति हुई तो त्रिकाली को भी शुद्धनय कहा, अनुभूति को भी शुद्धनय कहा — ऐसी बात है। अर्थ में आयेगा, (स्पष्टीकरण) करेंगे **और वह अनुभूति आत्मा ही है....** वापिस देखो, अनुभूति हुई वह क्षयोपशमभाव है, क्षायिकभाव है। समझ में आया?

वहाँ तो पहले निकाल दिया था कि जिसे क्षयोपशम, क्षायिकभाव अन्दर में नहीं है। बात तो ऐसी है बापू! जैनधर्म कोई अलौकिक चीज है! जैनधर्म कोई पक्ष नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है, उसका नाम जैनधर्म! आहाहा! और उस जापानवाले ने तो ऐसा कहा न? कि जैनधर्म किसे कहते हैं? जापानी व्यक्ति, ६३ वर्ष की उम्र और (उसका) लड़का, १७ वर्ष की उम्र परन्तु ऐतिहासिक खोज करके उसने निकाला — जैनधर्म क्या? अनुभूति वह जैनधर्म है अर्थात् वीतराग पर्याय का अनुभव होना, वह जैनधर्म है। राग का अनुभव होना। वह जैनधर्म नहीं है। आहाहा!

उसने पढ़ा तो होगा न, ऐतिहासिक व्यक्ति है और शोधक व्यक्ति है तो पढ़कर तो.... भले वह बात उसे जँचे या न जँचे, वह अलग बात है। यहाँ तो जैन में जन्म लेनेवाले बनियों को धन्धे में ५०-६०-७० (वर्ष) गये तो भी.... उस बेचारे ने लिखा है। यहाँ तो बनियों को जो धन्धा है, उसमें रुककर, यह (जैनधर्म) क्या चीज है और उसका अनुभव क्या है और क्या पर्याय है, क्या द्रव्य है, इसका निर्णय नहीं करते। यह उसने लिखा है। बनियों के हाथ में जैनधर्म आया तो बनिये, बनिये हैं, सब व्यापार में रूक गये हैं; पूरे दिन (व्यापार में फँसे हैं)।

**श्रोता :** बनिये द्रव्य को मानते तो हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वे कब इस द्रव्य को मानते हैं ? द्रव्य है ऐसा धारणा में माना है।

**श्रोता :** द्रव्य अर्थात् पैसा ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कमाते हैं, वह तो — द्रव्य तो (पैसा तो) धूल है। आहाहा! क्यों हसमुखभाई!

**श्रोता :** धूल कैसे कहलाये ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल और मिट्टी पुद्गल की पर्याय है।

**श्रोता :** इसके बिना सब्जी नहीं मिलती।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब्जी मिलती किसे है ? इससे सब्जी मिलती है ? वह चीज तो जो आनेवाली है (वह आती है)। यह तो कहावत में नहीं आता ? 'दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है' उसका अर्थ क्या ? अन्दर नाम लिखा है ? परन्तु जो रजकण उसके पास आनेवाला है, वह आयेगा। उसके राग से आयेगा और राग न करे तो नहीं आयेगा — ऐसा है नहीं। जो रजकण उसके पास आनेवाले हैं, वे आयेंगे ही नहीं आनेवाले हैं, वे नहीं आयेंगे। समझ में आया ? आहाहा! गोदिकाजी! यह तो कितने, पैसे के लिए कहाँ जाते हैं, भटकते हैं, अमेरिका-फमेरिका में.... आहाहा! तथापि वे रजकण आनेवाले होंगे तो आयेंगे। इसके राग के प्रयत्न से आते हैं, यह बिल्कुल झूठ है। आहाहा!

**श्रोता :** एक बार कहते हो कि पैसे के लिये जाते हैं और फिर कहते हो कि पैसे मिलते नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसने कहा नहीं आते ? वे तो यहाँ उसके पास आते हैं ऐसा कहा। उसके पास आते नहीं हैं, समीप में आते हैं।

**श्रोता :** उसको नहीं मिलते हैं ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं, उसका — परमाणु का भी आत्मा में अभाव है। स्वभाव का भाव है और परमाणु का अभाव है। अत: उसके पास अन्दर (पर द्रव्य) नहीं आता। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **यह अनुभूति आत्मा ही है....** देखो **इस प्रकार आत्मा एक ही**

**प्रकाशमान है....** आहाहा! इसका अर्थ किया, देखो! उसमें, पण्डितजी! जयचन्द पण्डित! शुद्धनय, आत्मा की अनुभूति, आत्मा सब एक ही है। है? यह अपेक्षा से समझाते हैं। शुद्धनय, आत्मा की अनुभूति और आत्मा तीनों एक ही हैं।

**श्रोता :** पर्याय और द्रव्य दोनों एक हैं?

**समाधान :** पर्याय और द्रव्य दोनों को शुद्धनय कहा। आत्मा को शुद्धनय कहा, अनुभूति को शुद्धनय कहा। आहाहा! शुद्धनय को शुद्धनय कहा, त्रिकाली विषय को, अपेक्षा से ऐसा समझना चाहिए न, आहाहा!

देखो! शुद्धनय कहो, आत्मा की अनुभूति कहो... वरना शुद्धनय का विषय तो ध्रुव त्रिकाल है परन्तु त्रिकाल को विषय किया तो पर्याय में अनुभूति हुई। अनुभूति में शुद्ध वस्तु प्रसिद्धि में आयी तो पर्याय को भी अनुभूति-शुद्धनय कहा गया है। आहाहा! अब ऐसा सीखना, रटना...

**श्रोता :** पर्याय को भी द्रव्य कह दिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय को द्रव्य नहीं कहा, शुद्धनय कहा। उस शुद्धनय का अर्थ? उस शुद्धनय के आश्रय से जो पवित्रता प्रगट हुई तो उसको भी शुद्धनय कहा और बाद में उसे आत्मा कहा। पवित्रता प्रगट हुई, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह पर्याय है, उसे आत्मा कहा। राग मैं नहीं, राग अनात्मा है — इतना बतलाने के लिये अनुभूति, जो सम्यग्दर्शन आदि है, उसे आत्मा कहा गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

**श्रोता :** एक बार और कह दें।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु जो है वस्तु, त्रिकाली चीज जो भगवान आदि-अन्तरहित (है)। पर्याय में आदि होती है और अन्त-नाश होता है। पर्याय उत्पन्न हुई तो आदि है, दूसरे समय में व्यय होता है — आदि-अन्त हो गया। वस्तु आदि-अन्त रहित है। आहाहा! अत: उसमें पर्याय भी नहीं — ऐसा आदि-अन्त रहित सम्पूर्णम्-आपूर्णम्-परिपूर्णम् पर से विमुक्त, उस चीज को यहाँ शुद्धनय कहा और उसका अनुभव किया उसे भी शुद्धनय कहा और उसका अनुभव हुआ उसे आत्मा कहा। आहाहा! क्योंकि निर्मल पर्याय हुई तो वह आत्मा है। राग की पर्याय आत्मा नहीं है, इतना बतलाने को अनुभूति — जो निर्मल

सम्यग्दर्शन -ज्ञान हुआ, वह आत्मा की पर्याय निर्मल में से निर्मल आयी तो निर्मल पर्याय को आत्मा कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी चीज है।

१४ वीं गाथा, (में) सम्यग्दर्शन की मुख्यता से यह कथन है। सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दर्शन में त्रिकाली — आदि-अन्तरहित आत्मा दृष्टि में आता है। समझ में आया? आहाहा!

**श्रोता :** इसलिए यह शिक्षण-शिविर लगाया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मैंने तो लगाया नहीं, मैंने तो कभी कहा ही नहीं। मैंने तो कभी कहा ही नहीं, यह होता है। यह तीर्थ का फण्ड बनाओ, यह भी मैंने तो कभी नहीं कहा। यहाँ तो उपदेश देते हैं, तत्त्व की बात है। हमारे पास यहाँ दूसरी बात नहीं है। ऐसा मकान (मन्दिर) बनाओ या ऐसा पुस्तक बनाओ, हमने कभी नहीं कहा। एक यह बहिन का पुस्तक (बहिनश्री के वचनामृत) आया, तब मैंने कहा था, वरना इतने बीस लाख (ग्रन्थ) छप गये हैं, हमने कभी नहीं कहा (कि) पुस्तक बनाओ। यह यहाँ तो उपदेश में आवे वह समझो.... वह समझो। हम कहीं इस प्रपंच में नहीं पड़ते। समझ में आया?

यह मकान (स्वाध्याय मन्दिर) बनने से पहले कहा न? स्वाध्याय मन्दिर (संवत् ९४) में (बना था) तो हमने तो कभी कहा नहीं कि बनाओ (हमने तो) ऐसा कहा था कि तुम बनाते हो, हमें रहना या न रहना, यह हम प्रतिबन्ध में नहीं हैं। रामजीभाई तो थे न ९४ में, यह मकान तुम बनाते हो तो हमें यहाँ रहना ही है — ऐसा कोई प्रतिबन्ध हमारे नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह बनानेवाला आत्मा नहीं है बापू! यह कौन करे, भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि इस वस्तु को — त्रिकाली को भी शुद्धनय कहने में आया और त्रिकाली का अनुभव हुआ, उस अनुभव को भी शुद्धनय कहा और त्रिकाली को भी आत्मा कहा तथा अनुभूति को भी आत्मा कहा। समझ में आया?

**यहाँ शिष्य पूछता है....** शिष्य ने सुना। यह बात सुनी और उसे ऐसा ख्याल में आया कि यह क्या कहते हैं? तो प्रभु! तुम कहते हो तो इसमें तो अनुभव कैसे हो? **जैसे ऊपर कहा है, वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?....** ऐसा शिष्य ने प्रश्न

किया। आप कहते हो कि भगवान आत्मा राग से भिन्न, बद्ध-राग से भिन्न, सामान्य, विशेष से भिन्न; सामान्य पर्याय से भिन्न, नियत एकरूप ऐसी चीज की अनुभूति कैसे होती है? उसका अनुभव — सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान — अनुभूति कैसे? यह प्रश्न आया, परन्तु यहाँ दर्शन का विषय है। समझ में आया? आहाहा! गाथा दर्शन की है। अनुभूति कैसे हो सकती है? आहाहा!

**श्रोता :** अनुभूति कैसे हो यह आज तो बाहर प्रसिद्ध करना ही पड़ेगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु अनुभूति, उसमें जरा मर्म है। क्या? देखो, **ऊपर कहा वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?**

**उसका समाधान** — देखो अब, **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव अभूतार्थ हैं...** आहाहा! शिष्य का प्रश्न हुआ कि ऐसे भगवान आत्मा की अनुभूति कैसे होती है? सुन प्रभु! यह **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव अभूतार्थ हैं....** कायम रहनेवाली चीज नहीं है। ठीक! राग आदि का सम्बन्ध या पर्याय का विशेष भाव, वह कायम रहनेवाली चीज नहीं है। आहाहा! बद्धस्पष्ट आदि भाव अभूतार्थ हैं... आहाहा! वह कायम रहने की चीज नहीं हैं। कायम रहनेवाली चीज तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द वह कायम रहनेवाली चीज है। आहाहा! समझ में आये, उतना समझना, प्रभु! यह तो परमात्मा की गम्भीर बातें हैं। यह कोई कथा वार्ता नहीं है, यह तो तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान के मुख से आयी हुई बात, इन कुन्दकुन्दाचार्य ने झेली और ले लिया है। है? आहाहा! और अमृतचन्द्राचार्य तो एक हजार वर्ष बाद हुए परन्तु उन्होंने उसका रहस्य खोल दिया है कि कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, कहना चाहते हैं और भगवान भी ऐसा कहते थे। आहाहा!

क्या उत्तर दिया? शिष्य ने प्रश्न किया कि ऐसा आत्मा अबद्धस्पृष्ट आदि है, उसका अनुभव कैसे हो?

**श्रोता :** प्रश्न बहुत अच्छा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रश्न था, अर्थात् कि यह बद्धस्पृष्ट आदि है न? यहाँ ऐसा कहते हैं। यह बद्धस्पृष्ट-राग आदि का सम्बन्ध है, पर्याय में भेद है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विशेष है। है ने और अनुभूति कैसे होती है? है? उसमें से पर से भिन्न कैसे होता है?

ऐसा कहते हैं (अर्थात्) शिष्य के प्रश्न में यह प्रश्न है कि राग का सम्बन्ध है, पर्याय में विशेषता है, गुण का विशेष भेद है — ऐसी चीज में उससे रहित अनुभूति कैसे होती है ? समझ में आया ? आहाहा ! यह आचार्य ने शिष्य के मुख में ऐसा प्रश्न (रख) दिया है।

सुन प्रभु ! एक बार सुन, कहते हैं। **यह बद्धस्पृष्ट आदि भाव अभूतार्थ हैं....** कायम रहनेवाली चीज नहीं है; इसलिए उससे भिन्न अनुभूति हो सकती है — ऐसा कहते हैं। राग आदि का सम्बन्ध और विशेष आदि पर्याय तथा गुणभेद — दर्शन, ज्ञान, चारित्र यह कायम रहनेवाली चीज नहीं है। अभूतार्थ होने से, उससे भिन्न **अनुभूति हो सकती है।** आहाहा ! गाथा तो बहुत अच्छी आ गयी है। १३-१४ आहाहा ! यह तो तुम्हारे नवाँ दिन है न ! नहीं ? नवाँ दिन है, ग्यारह दिन बाकी हैं। आहाहा ! क्या कहा ? शिष्य का प्रश्न ऐसा है कि प्रभु ! आप आत्मा को अबद्धस्पृष्ट आदि कहते हैं, पाँच बोल.... तो हमें तो (आत्मा) पाँच बोल सहित दिखता है — राग का सम्बन्ध है, पर्याय का विशेष है, गुणभेद (है ऐसा) हमें दिखता है तो उसमें से अनुभूति कैसे होती है ?

प्रभु, सुन ! यह सब भेदभाव कायम रहनेवाली चीज नहीं है, अभूतार्थ है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो बापू ! भगवान तीन लोक के नाथ, जिनेश्वरदेव के कथन हैं और यह सन्त तो उनके आडतिया हैं। आडतिया समझते हो ? एजेन्ट ! आहाहा !

**श्रोता :** उनकी आदत सोनगढ़ में होती है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सोनगढ़ में नहीं, आत्मा में। आहाहा ! शिष्य का प्रश्न यह था कि आप आत्मा को अबद्धस्पृष्ट आदि कहते हो परन्तु यहाँ तो प्रत्यक्ष दिखता है (कि) राग का सम्बन्ध है, पर्याय का भेद है, गुणभेद (है ऐसा) दिखता है तो यह उसमें अनुभूति कैसे हो ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। इतना तो शिष्य को ख्याल में आ गया है कि यह सब भेदभाव है, इनसे रहित अनुभूति करने को कहते हैं। अत: ऐसा कैसे हो ? वह ऐसा कहता है। आहाहा !

क्या कहा ? शिष्य का प्रश्न था कि ऐसा ऊपर कहा... ऊपर कहा ऐसा उसने ख्याल में लिया है। है ? आहाहा ! अन्दर शब्द-शब्द में भाव भरा है ! यह शिष्य प्रश्न करता है — ऊपर कहा है, वह मेरे ख्याल में आया है (कि) आप ऐसा कहते हैं। ऊपर कहा हुआ ऐसा शब्द आया न ? ऐसा सुनकर निकाल दिया — ऐसा नहीं, उसके ख्याल में आया है। प्रभु !

आप ऐसा कहते हो, आहाहा! गजब बात है। बापू! श्रोता भी ऐसा लिया है। है? कि अबद्धस्पृष्ट कहा, वह उसे ख्याल में आ गया है (कि) आप कहते हैं ऐसा (ख्याल आ गया है)। हमने हमारे ख्याल में से निकाल दिया सुनकर, ऐसी बात नहीं है। हमको ख्याल में आया कि आप ऐसा कहते हैं परन्तु मेरा प्रश्न है, प्रभु! यह राग और विशेष का सम्बन्ध तो है, अब उसमें से उससे रहित अनुभूति कैसे होगी? आहाहा! समझ में आया?

शब्द क्या है? शिष्य पूछता है कि **जैसा ऊपर कहा है,** जैसा ऊपर कहा है, जो आपने कहा वह हमारे ख्याल में आया है। आहाहा! जैसा ऊपर कहा है, वहाँ वजन है। पण्डितजी! **वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?....** आप कहते हैं, वैसी अनुभूति कैसे होती है? तो उसे कहा है — **समाधान - बद्धस्पृष्ट आदि भाव अभूतार्थ हैं....** कायम रहनेवाली चीज नहीं है। इसलिए कायम रहनेवाली चीज की अनुभूति होती है। आहाहा! क्या कहा? आहाहा! कितनी टीका!

**श्रोता :** कितनी टीका की टीका!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! प्रभु आप कहते हो कि आत्मा बद्धस्पृष्ट आदि पाँच भाव से रहित कहा तो ऊपर कहा हुआ ख्याल में है, आपने कहा वह भी यहाँ बद्धस्पृष्ट तो है, भेद है, विशेष है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विशेष भी है और आप उसकी-अभेद की अनुभूति करने को कहते हैं, यह कैसे हो सकता है?

प्रभु, सुन! यह पाँच बोल जो कहे, वे अभूतार्थ हैं। एक समय की स्थितिवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? एक समय की स्थितिवाले हैं, इसलिए अभूतार्थ हैं। आहाहा! राग का सम्बन्ध, गुण का विशेष भेद, एक समय का भेद है — एक समय की स्थिति है। आहाहा! तो एक समय की स्थिति का सम्बन्ध त्रिकाली के सम्बन्ध से रहित है। आहाहा! नियमसार में तो यहाँ तक कहा कि केवलज्ञान भी नाशवान है; अविनाशी तो त्रिकाली ज्ञायकभाव अविनाशी है। नियमसार ३८ गाथा (में कहा है कि) सात तत्त्व नाशवान हैं। आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष ये नाशवान हैं तो उसमें केवलज्ञान भी नाशवान है — ऐसा कहा है। एक समय की स्थिति है। केवलज्ञान की स्थिति एक समय है, गुण की

स्थिति त्रिकाल है परन्तु केवलज्ञान की पर्याय की स्थिति एक समय की है। अत: यह तुम अभूतार्थ कहते हो, उसकी स्थिति एक समय की है तो (वह) अभूतार्थ है तो उससे भिन्न अनुभूति हो सकती है। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)